P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-I* ISSUE-IX* December- 2016
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

सामाजिक न्याय और दलितों के लिए विशेष उपबंध

राजपाल मीणा
शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय बाबूशोभाराम कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

सारांश

भारत का संविधान समानता और न्याय के आदर्शों पर प्रतिष्ठित है ऐसी समानता और न्याय की स्थापना का प्रयास राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में किया गया है। हमारे संविधान निर्माताओं ने उक्त आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए देश के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ें वर्गों के लिए समुचित उपबन्ध किया है क्योंकि वे जानते थे कि जब तक इन वर्गों के प्रारम्भ में सहायता नहीं दी जायेगी, देश के विकास की गति अवरूद्ध हो जायेगी। प्रजातांत्रिक समानता के आदर्श केवल तभी साकार हो सकते है जबकि देश के समस्त वर्गों को एक स्तर पर लाया जाए इसीलिए हमारे संविधान में पिछड़ें वर्गों को देश के अन्य वर्गों के स्तर पर लाने के लिए कुछ अस्थायी प्रावधान हैं और साथ ही साथ अल्पसंख्यक वर्गों के सांस्कृतिक या अन्य अधिकारों के संरक्षण के लिए कुछ स्थायी प्रावधान की भी व्यवस्था है ताकि बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यकों पर अत्याचार नहीं कर सके।[1]

संविधान में पिछड़े वर्गों की स्थिति में सुधार हेतु अनेक उपबन्ध किये गये है जो इस प्रकार है

संविधान के भाग 3 में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए उपबन्ध है। अनु. 14 में यह उपबन्ध है कि राज्य भारत के किसी भी क्षेत्र में किसी व्यक्ति को समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।[2] अनु. 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म के आधार पर सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश पर राज्य द्वारा भेदभाव करने का प्रतिशोध करता है। अनुच्छेद की कोई भी बात राज्य को सामाजिक और शिक्षात्मक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों या अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिम जातियों की उन्नति के लिए विशेष उपबन्ध करने में बाधक न होगी। अनु. 16 सरकारी नौकरियों के लिए अवसर की समानता की गारण्टी देता है और इसके सम्बन्ध में धर्म, वंश जाति, लिंग, उदभव, जन्म स्थान, निवास के आधार पर भेदभाव को वर्जित करता है। राज्य उक्त वर्गों के व्यक्तियों के लिए यदि उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका है तो नियुक्तियों या पदों पर आरक्षण का प्रावधान कर सकता है।

अनु. 17 अस्पृष्यता का उन्मूलन करता है। अनु. 29 व 30 में अल्पसंख्यकों की संस्कृति के संरक्षण के लिए उपबन्ध किया है। अनु. 275 अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण हेतु राज्यों को केन्द्रीय सहायक अनुदान उपबन्ध करता है। अनु. 325 के अनुसार निर्वाचन हेतु साधारण निर्वाचक नामावली होगी तथा केवल धर्म, मूलवंश जाति, लिंग के आधार पर कोई व्यक्ति किसी ऐसी नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिए अपात्र नहीं होगा। अनु. 164 उड़ीसा, बिहार और मध्य प्रदेश राज्यों में आदिम अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए एक विशेष मंत्री का उपबन्ध करता है। अनु. 330 से लेकर 342 तक में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, एंग्लो इण्डियन और पिछडें वर्गों के लिए विशेष उपबन्ध किये गये है। अनु. 347, 350, 350 (क), 350 (ख) भाषायी अल्पसंख्यकों के संरक्षण की व्यवस्था करते है। अनु. 335 के अन्तर्गत इस बात का प्रावधान किया गया कि राष्ट्रपति अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन जातियों के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति करेगा जिसका कर्तव्य होगा कि वह इन वर्गों के लिए संविधान द्वारा प्रदत रक्षा उपायों से संबधित सभी विषयों का अध्ययन करें।

संविधान में 65वाँ संशोधन अधिनियम, 1990 किया गया जिसके द्वारा अनु. 338 में संशोधन करके अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी के स्थान पर राष्ट्रीय आयोग के गठन एवं शक्तियों का उल्लेख किया गया है। इस संविधान संशोधन की अनुपालना में मार्च 1990 में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग की स्थापना की गई। संविधान के अनु. 244 एवं उल्लेखित पाँचवी एवं छठी अनुसूची में अनुसूचित तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन एवं नियन्त्रण की विशेष व्यवस्था की गई है।

केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग की 11 मार्च 1993 को स्थापना की। यहीं नहीं भारतीय समाज में अस्पृष्यता को मिटाने के लिए संसद द्वारा अस्पृष्यता अपराध अधिनियम 1955 पारित किया गया जो सम्पूर्ण भारत पर लागू है। इस कानून के अनुसार अस्पृष्यता को एक दंडनीय अपराध घोषित किया गया है। इसके अतिरिक्त अनुसूचित जातियों और आदिवासियों के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों में कमी नहीं आई जिसे दृष्टिगत रखते हुए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 पारित किया गया।[3]

मुख्य शब्द : अनुसूची, समाजिक न्याय, पिछड़ा वर्ग, अस्पृष्यता

प्रस्तावना

पश्चिमी और पूर्वी दोनों ही राजनीतिक दर्शनों में न्याय की धारणा को बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। न्याय ना केवल राजनीतिक अपितु नैतिक चिन्तन का भी अनिवार्य आधार है। पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तक प्लेटो ने न्याय को मानव आत्मा की उचित अवस्था और मानवीय स्वभाव की प्राकृतिक मांग माना वहीं सेंट आगस्टाइन ने कहा कि "जिन राज्यों में न्याय नहीं रह जाता वे डाकुओं के झुंड मात्र कहे जा सकते है।"

सामाजिक न्याय का आशय आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में समानता है। सीमित अर्थ में, सामाजिक न्याय का तात्पर्य यह है कि सामाजिक जीवन में सब मनुष्यों की गरिमा स्वीकार की जाए, स्त्री पुरूष, गोरे काले या जाति, धर्म, क्षेत्र इत्यादि के आधार पर किसी व्यक्ति को बड़ा–छोटा या ऊँचा–नीचा न माना जाए; शिक्षा और उन्नति के अवसर सबको समान रूप से सुलभ हो, और सब लोग मनुष्य–मनुष्य के नाते मिल–जुलकर साहित्य, कला, संस्कृति और तकनीकी साधनों का उपभोग व उपयोग कर सकें जहाँ विभिन्न पदों के परस्पर–विरोधी दावों पर विचार किया जाता है वहाँ सामाजिक न्याय का विचार निर्बल और निर्धन पक्ष को विशेष सहायता और संरक्षण प्रदान करने की मांग करता है।[4]

सामाजिक न्याय का एक आवश्यक तत्व स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्रता के द्वारा कुछ बुनियादी अधिकार की आशा की जाती है जो व्यक्ति के नैसर्गिक विकास के लिए आवश्यक है किन्तु समाज की रचना यदि असमानता पर आधारित हो तो स्वतन्त्रता के अधिकार का कोई महत्व नहीं रह जाता अतः न्याय पूर्ण व्यवस्था वही होती है जो समान हो तथा समानता पर आधारित हो। सामाजिक न्याय का सम्बन्ध व्यक्ति के अधिकारों तथा सामाजिक नियन्त्रण के बीच संतुलन से है जो प्रचलित कानूनों के अन्तर्गत व्यक्ति की वैद्य आकांक्षाओं की पूर्ति को सुनिश्चित करें और उसे उनके अन्तर्गत लाभों तथा राष्ट्र की एकता एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल उसके अधिकारों के किसी उल्लंघन या अतिक्रमण के विरूद्ध सुरक्षा का आश्वासन दें।[5] यह स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय की अवधारणा बहुत व्यापक है जो अपने भीतर गरीबी, निरक्षरता का उन्मूलन व अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा को भी समाहित करता है। यह न केवल कानून के समक्ष समानता तथा न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के पालन से सम्बन्धित है अपितु इसका सम्बंध विकट सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन से भी है। ऐसी स्थिति में सामाजिक न्याय का विचार राज्य पर यह दायित्व डालता है कि वह दलितों तथा समाज के कमजोर वर्गों की दशा सुधाारने के लिए ठोस प्रयत्न करे।[6]

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी का उद्देश्य सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु भारतीय संविधान में जो उपबंध किये गये है। उन पर प्रकाश डालना है विशेषकर पिछड़े वर्गों के संबंध में जो प्रावधान व प्रयास भारतीय संविधान में वर्णित हैं उन्हें प्रस्तुत लेख में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

यद्यपि समाज के पिछड़े व दलित वर्गों की स्थिति में सुधार करने के संविधान द्वारा भरसक प्रयास किये गये है, इतना होने के उपरान्त आज भी देश में अस्पृष्यता प्रचलित है तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों पर अत्याचार एवं शोषण जारी हैं। जिसका प्रमुख कारण हमारी स्वयं की संकीर्ण मानसिकता है। अतः जब तक हम स्वयं की सोच व पिछडों के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं करेंगे तब तक ये संवैधानिक उपबन्ध बेमानी ही रहेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. जय नारायण पाण्डेय, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2015, पृ.स. 780
2. आचार्य डॉ. दुर्गादास बसु, भारत का संविधान एक परिचय, नौवा संस्करण, 2006, लेमिस्स नेक्मिस पब्लिशर्स वाधवा, नागपुर पृ.स. 87
3. सिंहरामगोपाल, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर तृतीय संस्करण 2010 पृ.सं. 37
4. जे.सी.जौहरी,आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, नई दिल्ली, स्टलिंग पब्लिशर्स, 2005, पृ.स. 193
5. डॉ. पूरण मल, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, द्वितीय संस्करण, पोइण्टर पब्लिशर्स जयपुर, पृ.स.109
6. ओम प्रकाश गाबा, राजनीति सिद्धान्त की रूप रेखा, मयूर पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2015, पृ.स. 378